❀ श्रीः ❀

आचार्य ग्रन्थमाला–३५

॥ पर-तत्व-सूत्रम् ॥



रचयिता एवं हिन्दी टीकाकार

डा० कृष्णदत्त भारद्वाज

एम० ए, पी एच० डी,

आचार्य, शास्त्री, साहित्यरत्न



आश्विन २०११

श्री आचार्यपीठ बरेली

मूल्य छः आना

❀ श्रीः ❀

आचार्य ग्रन्थमाला–३५

॥ पर-तत्व-सूत्रम् ॥



रचयिता एवं हिन्दी टीकाकार

डा० कृष्णदत्त भारद्वाज

एम० ए, पी एच० डी,

आचार्य, शास्त्री, साहित्यरत्न



आश्विन २०११

श्री आचार्यपीठ
बरेली

मूल्य
छः आना



सम्पादक—राघवाचार्य

मुद्रक—
आचार्य प्रेस

प्रकाशक—
श्री आचार्यपीठ

बरेली (उत्तरप्रदेश)



ग्रन्थ का परिचय

'परतत्वसूत्र' नामक ग्रन्थ के कुल मिलाकर १०१ सूत्रों में श्रीवैष्णव दर्शन का सरल एवं स्पष्ट परिचय दिया गया है। परतत्व की व्याख्या (१) को लेकर ग्रन्थ का आरम्भ होता है। और परतत्व ही शरण है (१०१) यह कहते हुए ग्रन्थ की समाप्ति होती है।

श्रीमन्नारायण परमतत्व हैं। वह सर्वत्र व्याप्त होने के कारण विष्णु और लोकों में शयन करने से पुरुष कहलाते हैं। वह ब्रह्म हैं और यह जगत उनकी लीला है। राम, श्री कृष्ण, भगवान् आदि उनके नाम हैं। (३–७)

परमतत्व श्रीमन्नारायण का वर्णन वेद के मन्त्र भाग में है, ब्राह्मण भाग में है, आरण्यकों में, तथा उपनिषदों में है। रामायण में, स्मृतियों में, ब्रह्मसूत्र तथा महाभारत में विशेषकर गीता में पुराणों में, पाञ्चरात्र आगम की संहिताओं में, पूर्वाचार्यों के स्तोत्रों में, सन्तों की वाणी में तथा कवियों के काव्यों में उनका प्रतिपादन है (८–२१)।

भगवान् नारायण कल्याण गुणाकर हैं। ये कल्याण गुण दिव्य हैं, प्राकृत गुणों से रहित हैं। इन गुणों में प्रमुख हैं ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज। (२२–२५)

भगवान् का रूप भी कितना दिव्य होता है। वह रूप सच्चिदानन्द होता है। उसमें देह और देही का भेद नहीं होता। और न

भगवान् को किसी इन्द्रिय की सहायता की आवश्यकता पड़ती उनका रूप कमनीय है। वे श्याम सुन्दर हैं। जड़ चेतन सभी से विलक्षण हैं। वे नित्य किशोर हैं। (२६–३५)

भगवान का और लक्ष्मी का सनातन सम्बन्ध है। परमतत्व श्रीमन्नारायण ही हैं लक्ष्मी रहित नारायण नहीं। तत्वतः लक्ष्मी नारायण से भिन्न नहीं हैं। (३६–३७)

भगवान् की नित्य विभूति इस लीला विभूति से भिन्न है। परमपद, वैकुण्ठ आदि उसके नाम है। यह विभूति नित्य है अप्राकृत है। इसकी सत्ता के प्रमाण वेदमन्त्रों में एवं स्मृति वचनों में मिलते हैं। (३८–४२)

परतत्व परवासुदेव भी कहलाते हैं। लीला विभूति में उनके व्यूह रूप हैं संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। इनसे क्रमशः लीला विभूति का संहार सृष्टि व पालन होता है। ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज इन छः गुणों में से क्रमशः दो दो गुणों का प्राकट्य एक एक व्यूह में होता है। (४३–४६)

केशव आदि रूप व्यूहान्तर हैं। राम, कृष्ण आदि विभव रूप हैं। ये विभव अवतार चार प्रकार के होते हैं—स्वरूपावतार, आवेशावतार, पूर्णावतार, एवं अंशावतार। इन अवतार रूपों में प्रकट होने पर भगवान् अपने स्वभाव का कभी परित्याग नहीं करते। (४७–५०)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने जाते हैं।

इनके प्राप्त करने के लिये भक्ति का आश्रय लिया जाता है।

भक्ति दो प्रकार की होती है एक परा और दूसरी परमा। ज्ञान और कर्म भक्ति के सहायक होते हैं। श्रुत्युक्त उपासना और स्मृत्युक्त उपासना की दृष्टि में भक्ति दो प्रकार की मानी जाती है। (५२–५६)

इस उपासना भक्ति का सार है प्रपत्ति। इसी को शरणागति कहते हैं। इसके छः अंग हैं—(अ) भगवान् के अनुकूल रहने का संकल्प (आ) प्रतिकूल न होने का निश्चय, (इ) भगवान् की रक्षा में विश्वास (ई) रक्षक के रूप में उनका वरण, (उ) आत्म-समर्पण और (ऊ) कार्पण्य। (५७–५६)

भक्ति के नौ अङ्ग होते हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। श्रवण के आदर्श हैं परीक्षित, कीर्तन के शुकदेव, स्मरण के प्रह्लाद, पाद-सेवन की लक्ष्मी, अर्चन के पृथु, वन्दन के अक्रूर, दास्य के हनुमान, सख्य के अर्जुन और आत्मनिवेदन के बलि। (६०–६८)

तन्मयता का आदर्श गोपिकायें मानी जाती हैं, वात्सल्य में यशोदा तथा ध्यान में ध्रुव। (६६–७१)

भक्ति-प्रपत्ति के साधनों में अंकन, पुण्ड्र धारण, नामकरण, याग, स्वाध्याय, तथा अभिगमन उपादन इज्या स्वाध्याय योग की की गणना की जाती है। तीर्थ यात्रा, व्रत, उपवास, शील,

सदाचार, विवेक आदि साधन सप्तक भक्ति के सहायक होते हैं। (७२-८६)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में पहिले तीन पुरुषार्थ ऐसे हैं जो अन्य देवताओं से भी प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु मोक्ष की प्राप्ति भगवान् श्रीमन्नारायण से ही होती है। मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। मोक्ष प्राप्त करने पर जीव अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। उसमें स्वभाविक ज्ञान, आनन्द आदि गुणों का पूर्ण विकास हो जाता है। किन्तु उसमें जगत की सृष्टि, स्थिति या प्रलय करने की शक्ति नहीं होती। उनको दिव्य रूप प्राप्त होजाता है। इस रूप में श्री, श्री वत्स और कौस्तुभ मणि नहीं होते। हो भी नहीं सकते। मोक्ष की अवस्था में भक्त और भगवान का सायुज्य नामक मिलन होता है। इसके बाद जीव को कर्म बन्धन प्राप्त नहीं होता। (९०-१००)

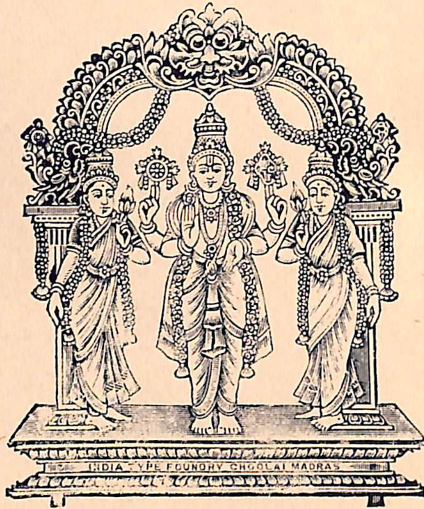


लेखक का परिचय

डाक्टर कृष्णदत्त भारद्वाज, एम० ए०. पी० एच०. डी०, वेदान्ताचार्य, पुराणाचार्य, शास्त्री, साहित्यरत्न सन् १६२७ से भारत के अन्यतम पब्लिक स्कूल एवम् राजधानी की प्रसिद्ध शिक्षा संस्था 'माडर्न स्कूल' में हिन्दी और संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं। संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति पर आपका अगाध अनुराग है। हिन्दी और संस्कृत में आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। पर-तत्व-सूत्रम् आपका मौलिक दार्शनिक ग्रन्थ है जिसमें आपने दर्शनशास्त्र की गम्भीर समस्याओं को वड़ी विद्वत्ता के साथ प्रमाण-पूर्वक सुलझाया है। हिन्दी में आपने कविता और नाटक दोनों क्षेत्रों में रचना की है। आपकी अपनी मौलिक कविताओं का संग्रह 'पांचजन्य' नाम से प्रकाशित हुआ है। 'अज्ञातवास' आपका एक सुन्दर नाटक है। इसके अतिरिक्त 'चार अभिनव एकांकी' में आपके धार्मिक एवम् पौराणिक आख्यानों पर आश्रित नाटकों का संग्रह है। आचार्य रामानुज के भक्तिसम्प्रदाय पर आपने अंग्रेजी में एक गहन खोजपूर्ण सन्दर्भ (थीसिस) लिखा है जिस से आपकी विशिष्टाद्वैतनिष्ठा पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।



परतत्व



श्रीमन्नारायण

श्रीमज्जगद्गुरु रामानुज सम्प्रदायाचार्य

उत्तराहोबिल झालरियामठाधीश्वर

अनन्त श्रीसमलंकृत

स्वामी श्री वीरराघवाचार्य महाराज

डीडवाणा-पुष्कर

के

करकमलों में

सादर समर्पित



❀ श्रीः ❀

॥ पर-तत्व-सूत्रम् ॥

अथातः परतत्वं व्याख्यास्यामः ॥१॥

अब इस लिये हम परतत्व अर्थात् भगवत्तत्व की व्याख्या करेंगे (क्योंकि उसकी आराधना से सुख और शान्ति मिलते हैं)।

श्रीमन्नारायणस्तत् तथा निर्देशात् ॥२॥

श्रीमन्नारायण ही परतत्व हैं क्योंकि शास्त्रों ने ऐसा निर्देश किया है।

व्याप्तेर्विष्णुः ॥३॥

सर्वत्र व्याप्त होने के कारण वे विष्णु कहलाते हैं।

पूर्षु शयनात् पुरुषः ॥४॥

उनका एक और नाम है पुरुष। पुरुष शब्द का अर्थ है पुरों में शयन करने वाला। ये सारे भूः भुवः स्वः आदिक लोक पुर हैं, और इनमें शयन करने के कारण वे पुरुष कहलाते हैं।

जगदुदयविभवलयलीलावत्वाद् ब्रह्म ॥५॥

जगत् के सृष्टि-स्थिति-प्रलय उनकी लीला है, अतएव वे ब्रह्म कहलाते हैं।

विकारः प्रकारे न प्रकारिणि ॥६॥

सृष्टि में जगत् अपनी सूक्ष्मावस्था से स्थूलावस्था में आ जाता है। स्थिति में वह स्थूल रहता है। एवं प्रलय में स्थूलावस्था से पुनः सूक्ष्मावस्था में आजाता है। जगत् में इस प्रकार का विकार अथवा परिवर्तन समय समय पर होता रहता है। यह विकार श्री भगवान् की शरीर-स्थानीय प्रकृति में ही होता है, स्वरूप में नहीं। जिस प्रकार मानव के केश और नख उसके जड़ शरीर के ही विकार हैं, चेतनांश के नहीं, उसी प्रकार गिरि-गगन, सागर-सरोवर आदि परमात्मा की प्रकृति के ही विकार हैं, स्वरूप के नहीं।

नामान्तराणि शास्त्रात ॥७॥

परतत्व के अन्य भी सहस्रशः नाम हैं यथा श्रीराम, श्रीकृष्ण, वासुदेव, भगवान् आदि। उन सभी का उल्लेख यहाँ संभव नहीं है, अतएव अन्य नामावली का परिचय

रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों से प्राप्त करना चाहिये। 'सहस्रनाम' महाभारत का एक प्रसिद्ध स्तोत्र है जिसमें श्रीविष्णु भगवान् के एक सहस्र नामों का उल्लेख हुआ है।

(परमतत्व के प्रमाण)

सूक्तोऽयं मन्त्रे ॥८॥

वेद के मन्त्र भाग में श्री भगवान् विष्णु का स्तव किया गया है।

उदाहरणार्थ—महस्ते विष्णो सुमितिं भजामहे अर्थात हे विष्णु भगवान्, हम सब पूजनीय आपकी दयादृष्टि का भजन करते हैं (ऋग्वेद १-१५६-३)

बृंहितो ब्राह्मणे ॥९॥

वेद के ब्राह्मण भाग में भी भगवान् की महिमा का विस्तार हुआ है।

उदाहरणार्थ—पुरुषोह नारायणोऽकामयत अतितिष्ठेयं सर्वाणि भूतानि (शतपथ) अर्थात् पुरुषोत्तम नारायण ने संकल्प किया कि मैं समस्त भूतों में स्थित होऊंगा।

वर्णित आरण्यके ॥१०॥

बेद के आरण्यक भाग में भी विष्णु-तत्व का वर्णन

हुआ है।

उदाहरणार्थ—सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः (बृहदारण्यक ४-४-२२) अर्थात् वे सब के नियन्ता, ईश्वर और अधिपति हैं।

उपासित उपनिषदि ॥११॥

वेद के उपनिषद-भाग में भी विष्णु उपासना का प्रतिपादन है। यद्यपि मन्त्र, ब्राह्मण वेद के ही दो अंश हैं तथापि उनका पृथक पृथक निर्देश विषय को विशद करने केलिये किया गया है। इसी प्रकार आरण्यक और उपनिषद के पृथक-पृथक निर्देश के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये।

उदाहरणार्थ—परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् (मुण्डकोपनिषत् ३-२-२८ अर्थात् परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त करता है। 'तत्वं नारायणः परम्' (नारायणोपनिषत्) अर्थात् नारायण परमतत्व हैं।

निरुपितो रामायणे ॥१२॥

रामायणमें भी परतत्व श्रीविष्णु का निरूपण हुआ है।

उदाहरणार्थ—भवान्नारायणो देवः (रामायण ६-११७-१४) अर्थात् आप नारायण देव हैं। 'त्वमोंकारः परात्परः' (६-११७-२१) अर्थात्

आप ओंकार हैं परात्पर हैं। 'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः' (६-११७-२८) अर्थात् सीता लक्ष्मी हैं और आप विष्णु।

स्मृतः स्मृत्याम् ॥१३॥

स्मृति में भी उनका स्मरण हुआ है।

उदाहरणार्थ—'प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणीयसाम्। रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥' (मनुस्मृति १२-१२२) अर्थात् सब के नियन्ता सूक्ष्म से भी सूक्ष्म प्रकाशमान ज्ञानगम्य उस परम पुरुष को जानना चाहिये।

सूत्रितो ब्रह्मसूत्रे ॥१४॥

ब्रह्मसूत्र अर्थात् वेदान्त सूत्र में भी परतत्व का प्रतिपादन कई सूत्रों में हुआ है।

उदाहरणार्थ—परात्तु तच्छ्रुतेः (२-३-४) अर्थात् श्रुति के द्वारा सिद्ध होता है कि जीवात्मा का कर्तृत्व परतत्वायत्त है। पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बंध-विपर्ययौ (३-२ ४) अर्थात् अनादिकर्म प्रवाह के कारण जीवात्मा का जो स्वरूप तिरोहित होता है वह परतत्व के संकल्पानुसार ही तिरोहित होता है। इस प्रकार परतत्व के संकल्प से ही बन्ध और मोक्ष होता है।

महितो महाभारते ॥१५॥

महाभारत में भी परतत्त्व श्रीमन्नारायण का सादर

निरूपण किया गया है।

उदाहरणार्थ—नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण। पीताम्बर परीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥ त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्। परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा विश्वतोमुखः॥ (वनपर्व) अर्थात् नीलोत्पलदल श्याम! हे पुण्डरीकाक्ष! हे पीताम्बरधारी! हे कौस्तुभमणि विभूषित! आप भूतों के आदि और अन्त हो! आप परम अयन हो परात्पर, परज्योति विश्वात्मा विश्वमुख हो।

गीतो गीतायाम् ॥१६॥

गीता में भी परतत्व का गान किया गया है।

उदाहरणार्थ—स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् (८-१०) अर्थात् वह उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त कर लेता है। पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया (८-२२)। अर्थात् वह परपुरुष अनन्य भक्ति के द्वारा प्राप्त होता है।)

(यद्यपि गीता महाभारत का अंश है, तथापि गीताके विशेष माहात्म्य के कारण गीता से अपने मत के समर्थन के लिये एक पृथक सूत्रकी रचना की गई है)।

पूर्णः पुराणे ॥१७॥

पुराण में भी श्रीविष्णु-तत्व का प्रचुर प्रतिपादन है।

उदाहरणार्थ—

त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः ।

वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्नुयात् ॥ (विष्णुपुराण १-४-२८)

अर्थात् आप परब्रह्म की आराधना कर मुमुक्षु जनों ने मुक्ति प्राप्ति की । भगवान वासुदेव की आराधना किये बिना कौन मोक्ष प्राप्त करेगा ।

आम्नात आगमे ॥१८॥

आगम से तात्पर्य है पाँचरात्र संहिताओं का । उन में भी श्रीभगवत्तत्त्व का पुनः पुनः प्रतिपादन हुआ है ।

उदाहरणार्थ—

परमेतत् समाख्यातम् (सात्वत संहिता १-२६) अर्थात् यह परतत्व का वर्णन है । वासुदेवः परः प्रभुः (सात्वत संहिता २-२) अर्थात् भगवान् वासुदेव पर प्रभु हैं ।

आरचिताञ्जलिराचार्य्यैः ॥ १६॥

अनेक आचार्यों ने भी भगवान् विष्णु की उपासना में अनेक स्तवांजलियाँ समर्पित की हैं ।

उदाहरणार्थ—

श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे (शंकराचार्य)

अर्थात् संसार के भय को नष्ट करने वाले भगवान् नारायण के चरण कमलों को नमस्कार करता हूं।

श्रुतिशिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्री निवासे।

भवतु मम परस्मिन् शेमुषी भक्तिरूपा ॥ (रामानुजाचार्य)

अर्थात् उपनिषदों में प्रकाशमान श्रीपरब्रह्म श्रीनिवास के प्रति मेरी भक्तिरूप बुद्धि हो।

कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तु दोषविवर्जितम् (वल्लभाचार्य)

अर्थात् समस्त दोषों से रहित श्रीकृष्ण से परे कोई देव नहीं है।

व्यूहांगिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् (निम्बाकाचार्य)

अर्थात् व्यूहरूपों के मूल वरणीय पर ब्रह्म कमल नेत्र श्रीकृष्ण ही का ध्यान करते हैं।

स्तुतः सद्भिः ॥२०॥

अनेक संतों ने भी समय-समय भगवान् नारायण की स्तुति में अनेक स्तोत्रों की रचना की है।

उदाहरणार्थ—चिन्तयामि हरिमेव सन्ततम् (कुलशेखर) अर्थात् मैं सदा हरि का ही चिन्तन करता हूँ।

कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने (मधुसूदन सरस्वती)

अर्थात् कृष्ण से परे और किसी तत्व को मैं नहीं जानता।

ईडितः कविभिः ॥२१॥

अनेक कवियों ने भी अपने काव्यों में भगवान् विष्णु का आराधन किया है।

उदाहरणार्थ—

सत्यवृत्तमपि मायिनं जगद्-वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम्
जन्मबिभ्रतमजं नवं बुधा यं पुराण पुरुषं प्रचक्षते (श्रीहर्ष)

पुराण पुरुष सत्य होने पर भी मायापति, जगत में सबसे वृद्ध होने पर भी बालक, अजन्मा होते हुये भी जन्मधारी हैं ऐसा बुद्धिमानों का कथन है।

लीला वेणुरवामृतैक रसिकांलावण्यलक्ष्मीमयीम्
बालां बाल तमालनीलवपुषं वन्दे परां देवताम् (लीलाशुक)

उन पर देवता को नमस्कार जो वंशी वादन के रसिक हैं, परम सुन्दर हैं और नवतमाल के समान नीलवर्ण हैं।

(दिव्य गुणों का निरूपण)

अत्रानेके कल्याणगुणाः स्वरूपभूताः ॥२२॥

श्रीभगवान् में अनेकानेक दिव्य गुण हैं जो कि उनके स्वरूप ही हैं। ईश्वर ज्ञान स्वरूप है, आनन्द स्वरूप है।

निखिल हेय प्रत्यनीकाः ॥२३॥

वे दिव्यगुण सभी हेयगुणों अर्थात् सत्व, रज और तम से रहित हैं।

ज्ञानानन्द सत्यकाम सत्य संकल्पादयः ॥२४॥

वे गुण हैं ज्ञान, आनन्द, सत्य काम, सत्य संकल्प आदिक।

षाड्गुण्यस्य मुख्यत्वम् ॥२५॥

उन अनन्त गुणों में से छः गुण मुख्य हैं। वे छः गुण हैं, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज। सब कुछ जानना ज्ञान है। समस्त ब्रह्माण्डों को अपने अपने स्थानों पर धारण करना बल है। सब चेतन और अचेतन विश्व का नियमन करना ऐश्वर्य है। विकार को प्राप्त न होना वीर्य है। सब कुछ कर सकना शक्ति है, और दूसरों का परिभव करने का सामर्थ्य तेज है।

(दिव्य रूप का निरूपण)

अस्य कल्याणं रूपमपि स्वरूपभूतम् ॥२६॥

श्री भगवान् का दिव्य रूप भी उन का स्वरूप ही है।

अतएव षाड्गुण्यविग्रहः ॥२७॥

इसी लिए परमात्मा के रूप को उक्त छः गुणों का समुदाय कहा जाता है।

सच्चिदानन्द-घनश्च ॥२८॥

और परमात्मा को सच्चिदानन्द-घन भी कहते हैं। घन=मूर्ति, आकार, रूप। परमात्मा का दिव्य रूप सत्, चित् और आनन्दमय है।

देहदेहिभिदानात्र ॥२९॥

परमात्मा में देह और देही का भेद नहीं है। परमात्मा और उन का दिव्य आकार एक ही है।

न करणापेक्षं द्रष्टृत्वं स्वभावतस्तु ॥३०॥

परमात्मा को दर्शन, श्रवण आदि व्यापारों के लिए प्राकृत इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयमेव अर्थात् बिना इन्द्रियों के ही देखते हैं सुनते हैं आदि।

अमल-कमल-दल-नयन-युगलः ॥३१॥

श्री भगवान् के दोनों नेत्र निर्मल कमल के दल के समान कमनीय हैं।

श्यामोऽपि स्वर्णाभः ॥३२॥

वे श्याम-सुन्दर हैं, किन्तु उन के श्रीविग्रह से स्वर्णिम आभा निकलती रहती है।

अन्या रूप-माधुरी शास्त्रात् ॥३३॥

उनके अन्य अंगोपांगों के माधुर्य का परिचय रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों से प्राप्त कर लेना चाहिये।

स्वेतर-समस्त-वस्तु-विलक्षणः ॥३४॥

उन की उपमा उन से ही दी जा सकती है। वे स्वयम् अपने उपमान हैं। उन से भिन्न किसी जड़ चेतन में वैसा सौन्दर्य, माधुर्य, औदार्य, गाम्भीर्य नहीं है।

अपीच्यवयाश्च ॥३५॥

और उन का वय अभिराम है। वे नित्य किशोर हैं।

नित्यं सश्रीकः ॥३६॥

प्रभु नित्य ही लक्ष्मी जी के साथ विराजमान हैं।

वे नित्य ही लक्ष्मी-रञ्जित-वाम-भाग हैं। जब वे अकेले दर्शन देते हैं तब भी उन के वक्षस्थल के वामांश में लक्ष्मी जी स्वर्णिम रेखा के रूप में विराजमान रहती हैं। अतएव द्वितीय सूत्र में केवल नारायण को परतत्त्व न कह कर श्रीमन्नारायण को ही परतत्त्व कहा गया है।

तदभिन्नेयम् ॥३७॥

तात्त्विक दृष्टि से लक्ष्मी जी नारायण भगवान् से भिन्न नहीं हैं।

प्रमाणार्थ—

नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम (विष्णुपुराण)

अर्थात्—भगवान् विष्णु की सहधर्मिणी लक्ष्मी जगन्माता हैं नित्य है और विष्णु के समान ही सर्वव्यापक हैं।

अनन्या हि मया सीता भास्करेण यथा प्रभा (रामायण ६-११८-२०)

अर्थात्—सूर्य की प्रभा के समान सीता कभी मुझ से अलग नहीं है।

(*नित्य विभूति का निरूपण*)

परिकर-परिच्छद-परीवारा नित्य विभूतौ ॥३८॥

यह त्रिगुणमय जड-चेतनात्मक प्रपंच श्री भगवान्

की लीला-विभूति है। उनकी एक और विभूति है जो त्रिगुणातीत है, दिव्य है। उसे नित्य-विभूति कहते हैं। वहाँ का सभी वैभव दिव्य है। नित्य है। उनके दिव्य पर्यङ्क का नाम अमितौजा है जिसका उल्लेख उपनिषद् की पर्यंक-विद्या में हुआ है। दिव्य ही उनके वसन और आभरण हैं। शेष, गरुड़, पांचजन्य, सुदर्शन, कौमोदकी, वनमाला, एवम् मन्त्रमूर्ति नित्य-भक्तों से वे सतत सेवित हैं।

परमपद-परम व्योम-वैकुण्ठादि-पद-वाच्या ॥३६॥

उस दिव्य नित्य विभूति के अनेक नाम हैं यथा परम पद, परम व्योम, वैकुण्ठ आदि।

अकृता नित्यत्वात् ॥४०॥

वह विभूति नित्य है। अतएव किसी समय-विशेष में उसकी रचना नहीं होती। रचना न होने के कारण उसके विनाश का भी प्रश्न नहीं उठता। उसके उदय और अस्त नहीं होते। वह नित्य, शाश्वत और सतत है।

अप्राकृता स्वयं प्रकाशत्वात् ॥४१॥

वह नित्य-विभूति स्वयं-प्रकाश है। वह प्रकृति के

गुणों से निर्मित नहीं है, अपितु अप्राकृत है।

तत्सिद्धिः श्रुतेः स्मृतेश्च ॥४२॥

वेद के मन्त्रों से और स्मृति के वचनों से उस नित्य विभूति की सत्ता सिद्ध होती है।

उदाहरण के लिये—

'त्रिपादस्याऽमृतं दिवि' (ऋग्वेद १०.९०.३)

अर्थात् परब्रह्म की अमर त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठधाम में है।

न यत्र माया किमुता परे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः

(भागवत २.९.१०)

अर्थात् जहाँ माया नहीं है फिर अन्य प्राकृतिक तत्वों की बात ही क्या। देवता और असुरों के पूज्य नित्य सूरि वहाँ निवास करते हैं।

(लीला विभूति का निरूपण)

संकर्षण-प्रद्युम्नाऽनिरुद्धा व्यूहाः ॥४३॥

त्रिगुणमयी विभूति के संहार, सृष्टि और पालन के लिये श्री भगवान् के क्रमशः तीन रूप हैं—संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। इन्हें तीन व्यूह कहते हैं।

ज्ञान-बलाभ्यां प्रथमः ॥४४॥

पच्चीसवें सूत्र में छः गुण बताये गये थे। उनमें से ज्ञान और बल से प्रथम व्यूह, अर्थात् संकर्षण होते हैं जो कि प्रलय में इस लीला का संहार कर लेते हैं।

वीर्यैश्वर्याभ्यां द्वितीयः ॥४५॥

वीर्य और ऐश्वर्य नामक गुणों से द्वितीय व्यूह अर्थात् प्रद्युम्न होते हैं जो कि सृष्टि के समय इस लीला का विकास कर देते हैं।

शक्ति-तेजोभ्यां तृतीयः ॥४६॥

शक्ति और तेज नामक गुणों से तृतीय व्यूह अर्थात् अनिरुद्ध होते हैं जो कि इस लीला विभूति का पालन करते हैं।

अन्येऽपि केशवादयः ॥४७॥

और भी केशव आदिक व्यूह होते हैं।

राम कृष्णादयो विभवा लीला विभूतौ ॥४८॥

लीला-विभूति में साधुओं के परित्राण के लिये,

असाधुओं के विनाश के लिये एवम् धर्म की स्थापना के लिये भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि रूप से अवतीर्ण हुआ करते हैं अवतार का दूसरा नाम है विभव।

ते च स्वरूपावेश-पूर्णांश-भेद-भिन्नाः ॥४९॥

ये अवतार मुख्यतया चार प्रकार के हैं—स्वरूपावतार, आवेशावतार, पूर्णावतार और अंशावतार।

स्वरूपेऽजहदेव स्वभावम् ॥५०॥

जब भगवान् स्वरूप में अवतीर्ण होते हैं तो अपने स्वभाव का परित्याग किये बिना ही आते हैं।

(उपासना का निरूपण)

उपासनं भक्तिः ॥५१॥

उपासन, उपासना, भक्ति और भजन पर्याय हैं। भक्ति का अर्थ है सेवा, और भजन भी उसे ही कहते हैं। इष्टदेव के पास बैठने को उपासना कहते हैं और उपासन भी वही है।

सा द्विधा परा परमा च ॥५२॥

भक्ति दो प्रकार की है परा और अपरा। परा भक्ति

साधन रूपा है और परमा भक्ति साध्य है।

श्रवणादीन्यनेकांगानि ॥५३॥

इस भक्ति के श्रवण, कीर्तन आदि अनेक अंग हैं।

ज्ञान-कर्मणी सहाये ॥५४॥

ज्ञान और कर्म भक्ति के अनुष्ठान में सहायक हैं, अतएव उपादेय हैं।

वैदिकोपासनेऽधिकार उपनीतानाम् ॥५५॥

अनुष्ठान के कारण उपासना दो प्रकार की है। श्रुत्युक्त उपासना और स्मृत्युक्त उपासना। श्रुति से यहाँ तात्पर्य है मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् का; एवम् स्मृति से तात्पर्य है अन्य रामायण-महाभारतादि ग्रन्थों का। श्रुत्युक्त उपासना में उन्हीं का अधिकार है जिनका उपनयन संस्कार हो चुका है।

शास्त्रान्तरोक्तेसर्वेषाम् ॥५६॥

श्रुति से भिन्न रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में उपदिष्ट उपासना में सभी का अधिकार है।

प्रपत्तिः ॥५७॥

इस उपासना मार्ग में प्रपत्ति मुख्य है। श्री भगवान् को ही अपना सर्वस्व मानकर अपने उद्धार का सारा भार उन्हीं के पद-पद्मों में रख देना प्रपत्ति है। इस से उपेय और उपाय, अथवा गन्तव्य और गति, किंवा साध्य और साधन श्रीमन्नारायण ही हो जाते हैं।

शरणागतिः सारः ॥५८॥

सब वेदों का आध्यात्मिक रहस्य उपनिषदों में निहित है, और सब उपनिषदों का निष्कर्ष श्रीमद् भगवद्गीता में विद्यमान है। गीता का भी पर्यवसान है शरणागति में। अतएव मानव-जीवन में उपादेय सार यही है। शरणागति प्रपत्ति का ही दूसरा नाम है।

षडङ्गेयम् ॥५९॥

शरणागति के छः अंग हैं—

(अ) आनुकूल्य का संकल्प,

(आ) प्रातिकूल्य का परित्याग,

(इ) परमात्मा द्वारा अपनी रक्षा में विश्वास,

(ई) रक्षक रूप में परमात्मा को वरण करना,

(उ) परम विनम्रता, और

(ऊ) आत्म-समर्पण ।

(भक्ति के कुछ आदर्शों का निरूपण)

श्रवणं देवरातवत् ॥६०॥

भगवान् की कथा का, उनके गुण-गान का श्रवण वैसी तन्मयता के साथ करना चाहिये जैसी तन्मयता के साथ महाराज परीक्षित ने किया था ।

कीर्त्तनं वैयासकिवत् ॥६१॥

भगवत्कथाओं का, भगवान् की गुणावली का, कीर्त्तन शुकदेव जी के समान करना चाहिये ।

स्मरणं प्रह्लादवत् ॥६२॥

प्रह्लाद के समान भगवान् का स्मरण करना चाहिये ।

चरणसेवा जलधिजावत् ६३॥

लक्ष्मी जी के समान भगवान् की चरण-सेवा करनी चाहिये ।

अर्चनं वैन्यवत् ॥६४॥

महाराज पृथु के समान भगवान् की अर्चा पूजा करनी चाहिये ।

वन्दनं श्वफल्कतनयवत् ॥६५॥

अक्रूर जी के समान भगवान् का वन्दन करना चाहिये ।

दास्यमञ्जनानन्दनवत् ॥६६॥

हनूमान् जी के समान दास्यभाव रखना चाहिये ।

सख्यं गुडाकेशवत् ॥६७॥

अर्जुन के समान सख्यभाव रखना चाहिये ।

आत्म-निवेदनं वैरोचनिवत् ॥६८॥

महाराज बलि के समान आत्म निवेदन करना चाहिये ।

तन्मयता व्रज-वधूवत् ॥६९॥

व्रज-गोपियों के समान भगवान् में तन्मयता रखनी चाहिये ।

वात्सल्यं नन्दपत्नीवत् ॥७०॥

यशोदा जी के समान वात्सल्य भाव रखना चाहिये।

ध्यानमौत्तानपादिवत् ॥७१॥

ध्रुव के समान ध्यान करना चाहिये।

(साधनों का निरूपण)

अङ्कनम् ॥७२॥

श्री भगवान् के आयुधों के चिन्हों को शरीर पर धारण करना चाहिये।

ऊर्ध्वपुण्ड्रम् ॥७३॥

मस्तक आदि पर श्वेत मृत्तिका, गोपी चन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड् लगाना चाहिये।

नामकरणम् ॥७४॥

भगवान् की स्मृति को बनाये रखने वाला नाम अपने लिये ले लेना चाहिये। उपर्युक्त तीन साधन अर्थात अंकन, ऊर्ध्वपुण्ड और नाम-करण वैष्णवी दीक्षा के समय गुरु-द्वारा सम्पादित होते हैं।

याग-स्वाध्याय-योगाः ॥७५॥

भगवन्मूर्ति की उपासना, भगवन्नाम का जप और भगवान् के रूप का ध्यान नित्य कर्त्तव्य है।

अभिगमनादयः पंच ॥७६॥

अभिगमन, उपादन, इज्या, स्वाध्याय और योग, ये पाँच साधन मुख्य हैं। स्नान, संध्या, जप, होम वेदपाठ और तर्पण से निवृत्त होकर श्री भगवान् की आराधना के लिये उन के श्री विग्रह के समीप जाना अभिगमन कहलाता है। भगवान् की पूजा के लिए पत्र, पुष्प, फल, जल आदि सामग्री का आयोजन करना उपादान कहलाता है। भगवान् की मूर्ति की इच्छानुसार विविध उपचारों से पूजा इज्या कहलाती है। भगवान् के मन्त्र का जप, स्तोत्र का पाठ स्वाध्याय कहलाता है। और भगवान् के रूप का ध्यान करना योग कहलाता है।

इज्या द्विविधा बाह्यान्तरभेदात् ॥७७॥

पूजा दो प्रकार की होती है। धातु, पाषाण आदि की प्रतिमा में पूजा बाह्य पूजा कहलाती है और मनोमयी प्रतिमा में पूजा आन्तर अथवा मानसिक पूजा होती है।

प्रतिमायाम् ॥७८॥

प्रतिमा में पूजन करने का सनातन सम्प्रदाय है।

विहितैः कुसुमादिभिः ॥७९॥

पूजा में उन उन पुष्प आदि का उपयोग करना चाहिये जिन जिनका शास्त्र में विधान है उदाहरणार्थ— भगवान् विष्णु की पूजा में तुलसीदल समर्पण किये जाते हैं, अक्षत नहीं।

यात्राव्रतोपवासाः ॥८०॥

तीर्थों की यात्रा, व्रत और उपवास चित्त शुद्धि करने के कारण आराधना में सहायक होते हैं।

शीलाचार निष्ठा ॥८१॥

शील और सदाचार का सदा पालन करना चाहिये।

विवेकादीनां पालनम् ॥८२॥

विवेक आदि का पालन करना चाहिये। इनका उल्लेख अगले सूत्रों में किया जायेगा। विवेक से अनुद्धर्ष तक सात साधन होते हैं। इनका नाम है साधन सप्तक।

आहारे शुद्धिर्विवेकः ॥८३॥

भोजन में सब प्रकार की शुद्धि का ध्यान रखना विवेक कहलाता है।

कामादिष्वनासक्तिर्विमोकः ॥८४॥

काम आदि मानसिक दोषों में आसक्ति न रखना विमोक कहलाता है।

आलम्बन संशीलनमभ्यासः ॥८५॥

भक्ति के आलम्बन भगवान् के रूप का ध्यान, गुणावली का श्रवण, मन्त्र का जप आदि अभ्यास कहलाता है।

पंचमहायज्ञाद्यनुष्ठानं क्रिया ॥८६॥

पंच महायज्ञ आदि शास्त्रोक्त कर्मों का करना क्रिया है। देवयज्ञ (हवन) पितृयज्ञ (तर्पण) ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) भूतयज्ञ (प्राणियों को अन्नदान) और नृ-यज्ञ (अतिथि सत्कार) ये पाँच महायज्ञ हैं।

दयार्जवादि कल्याणम् ॥८७॥

दीनों पर दया करना, स्वभाव में सरलता रखना आदि गुणों को 'कल्याण' कहते हैं।

दुःखेऽनवसादः ॥८८॥

दुःख में विचलित न होना 'अनवसाद' है।

सुखेऽनुद्धर्षः ॥८९॥

सुख पाकर आपे से बाहर न हो जाना 'अनुद्धर्ष' है। विवेक से लेकर अनुद्धर्ष तक साधनों को ही साधन सप्तक कहा जता है।

(सायुज्य का निरूपण)

भक्तो द्विविधस्त्रिवर्गापवर्गपरभेदात् ॥९०॥

भक्त दो प्रकार के होते हैं। कुछ तो ऐसे होते हैं जो भगवान् से धर्म, अर्थ और काम का सुख चाहते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो उनसे मोक्ष का सुख माँगते हैं।

परतत्त्वोपासका द्वितीयभाजः ॥९१॥

श्री भगवान् भक्तों को चतुर्विध पुरुषार्थ का सुख देकर कृतार्थ कर देते हैं। धर्म, अर्थ और काम के सुख का वरदान अन्य देवताओं से भी मिल जाता है; किन्तु अपवर्ग की प्राप्ति के लिये शास्त्र ने श्रीमन्नारायण की आराधना का उपदेश दिया है।

स्वात्मयाथात्म्यवेदितारोऽपि ॥६२॥

श्री भगवान् आराध्य हैं, मैं आराधक हूँ; वे स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ; इस प्रकार से अपने वास्तविक स्वरूप को जानने वाले ज्ञानी भी मोक्ष का लाभ करते हैं।

न तत्राऽऽगन्तुकदेहपरिग्रहः
श्रुतिव्याकोपात् ॥६३॥

मोक्ष दशा में जीव अपने शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। भगवदाराधना के लिये उसका भी आकार प्रकार दिव्य होता है। उस समय जीव किसी स्व-व्यतिरिक्त आगन्तुक शरीर को धारण नहीं करता। उस समय आगन्तुक शरीर के धारण की बात वेद-विरुद्ध है।

बन्धाभावे स्वाभाविकगुणविकासः ॥६४॥

जब सांसारिक बन्धनों से जीव का छुटकारा हो जाता है तब उस के स्वाभाविक ज्ञान, आनन्द आदि गुणों का पूर्ण विकास हो जाता है।

सत्यसंकल्पत्वेऽपि विश्वव्यापृतावनधिकारः
॥६५॥

मुक्त जीव सत्य-संकल्प हो जाता है। उस की इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। किन्तु इतनी महिमा से युक्त

होने पर भी उस में जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने की शक्ति नहीं होती। जगत् के सृष्टि आदि व्यापार तो ईश्वर के ही हैं।

उपास्यसमानाकारता विना श्रीश्रीवत्सकौस्तुभात् ॥९६॥

मुक्त जीव का रूप श्री भगवान् का सा हो जाता है, किन्तु मुक्तों के वक्षस्थल पर श्री और श्री वत्स नहीं होते; एवम् उनके गले में कौस्तुभ मणि भी नहीं होती है। श्री, श्री वत्स और कौस्तुभ का धारण भगवान् के ही आकार की विशेषता है।

सायुज्यं परमः पुमर्थः ॥९७॥

भक्त और भगवान् का आध्यात्मिक मिलन सायुज्य कहलाता है, और यही जीव का परम पुरुषार्थ है।

तत उत्तमा सेवा परमाभक्तिः ॥९८॥

सायुज्य के समय की सेवा उत्तम है, क्यों कि यही साध्य है। इसी को ५२ वे सूत्र में परमाक्ति कहा गया था।

न तदा कर्मणः संसरणम् ॥९९॥

सायुज्य की प्राप्ति के अनन्तर कर्म के बन्धन में बँधकर संसार में नहीं आना पड़ता।

स्वेच्छया परतत्त्वेच्छया तु ॥१००॥

किन्तु मुक्त जीव अपनी इच्छा से अथवा श्री भगवान् की इच्छा से इस त्रिगुणमय लीला-विभूति में आ सकता है।

परतत्त्वं शरणं परतत्त्वं शरणम् ॥१०१॥

परम तत्व श्रीमन्नारायण ही सर्वदा और सर्वथा रक्षक हैं।



❀ शुद्धि पत्र ❀

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१०	विष्णुं	विष्णु
३	८	सुमितिं	सुमतिं
३	१४	पुरुषोह	पुरुषोह
४	८, १०	पृथक	पृथक्
५	५	मणीयसाम	मणोरपि
५	१२	२-३-४	२-३-४१
५	१४	३-२-४	३-२-५,
६	१०	लीला वेणु	लीलावेणु
६	१०	तैक रसिकां	तैकरसिकां
६	११	बाल तमाल	बालतमाल
१०	२	ओर	और
११	११	द्रष्ट्रत्वं	द्रष्टृत्वं
१४	१२	अकृतानित्य	अकृता नित्य
२३	५	उपादन	उपादान
२८	१६	परमाक्ति	परमाभक्ति





सम्पादक—राघवाचार्य

मुद्रक—
आचार्य प्रेस

प्रकाशक—
श्री आचार्यपीठ

बरेली (उत्तरप्रदेश)

